निगम-भारत उर्फ़ हिंदू-राष्ट्र को समर्पित टीम-इंडिया!

प्रेम सिंह

(*मैंने लेख के शीर्षक में विस्मयादी-बोधक चिन्ह का प्रयोग किया है. लेकिन लेख में कहीं भी इस चिन्ह का सहारा नहीं लिया है. पिछले तीन दशकों से देश की मुख्यधारा राजनीतिक और बौद्धिक जमातें निगम-भारत के निर्माण में टीम-वर्क की भावना से लगी हुई हैं. सारा पक्ष-विपक्ष इस टीम-वर्क के अंतर्गत ही संचालित होता है. चाहें तो इसे टीम-इंडिया का नाम दे सकते हैं. ठंडे लोहे जैसी इस सच्चाई पर मुझे विस्मय नहीं होता है. मैं खुद अपनी असमर्थताओं/सीमाओं के चलते कई बार इस टीम-वर्क का हिस्सा बने रहने को अभिशप्त होता हूं. भारत के जो बुद्धिजीवी/नेता इस टीम-वर्क का हिस्सा होने की सच्चाई को स्वीकार नहीं करते, उनके बारे में यही कहा जा सकता है कि वे छद्म विचारणा और आचरण में जीने के लिए अभिशप्त हैं.*)

भारतीय मुद्रा पर लक्ष्मी-गणेश के चित्र छापने की मांग पर भारत के धर्मनिरपेक्षतावादी बुद्धिजीवियों और नेताओं को अरविंद केजरीवाल के साथ एकजुट हो जाना चाहिए. बल्कि, धर्मनिरपेक्ष खेमे को कारपोरेट राजनीति के अपने नए नमूने से यह प्रार्थना भी करनी चाहिए कि वह गांधी के चित्र की जगह अम्बानी-अडानी के चित्र छापने की मांग भी लक्ष्मी-गणेश के चित्र छापने की मांग के साथ ही कर दे. कहीं ऐसा न हो कि इस मामले में आरएसएस/भाजपा उससे बाज़ी मार ले जाएं. भले ही किरण बेदी ने अन्ना हजारे को 'बड़ा' और केजरीवाल को 'छोटा' गांधी बताया था, केजरीवाल की राजनीति में गांधी का कोई महत्व नहीं है. उसकी राजनीति के 'आदर्श' भगत सिंह और अम्बेडकर हैं. मुद्रा पर गांधी की तस्वीर वह मजबूरी में स्वीकार कर रहा है. धर्मनिरपेक्ष खेमा केजरीवाल को कहे कि गांधी से मुक्ति पाने का यह सही मौका है. ऐसी मांग करके वह कारपोरेट राजनीति के कर्तव्य-पथ पर आरएसएस/भाजपा से काफी आगे बढ़ सकता है. निगम-भारत उर्फ़ हिंदू-राष्ट्र में गांधी की जैसी फज़ीहत हो रही है, उसके चलते यह एक न एक दिन होना ही है. जितना जल्दी उतना बेहतर.

धर्मनिरपेक्ष खेमे का केजरीवाल को समर्थन स्वाभाविक है. क्योंकि उसका सांप्रदायिक दक्षिणपंथ की नई बानगी के इस वाहक के साथ खून का रिश्ता बना हुआ है. यह कोई इतिहास की धुंध में छिपी सच्चाई नहीं है. यह आंखों के सामने चल रहे वर्तमान की सच्चाई है. इस रिश्ते की फेहरिस्त का एक बार फिर उल्लेख करके मैं इस खेमे के और ज्यादा कोप का भाजन नहीं बनना चाहूंगा.

अलबत्ता, अब यह अच्छी तरह से समझा जा सकता है कि संविधान-सम्मत आरक्षण-व्यवस्था के विरोध में उठी यूथ फॉर इक्वलिटी (वाईएफई) की मुहिम का मुख्य केंद्र जेएनयू ही क्यों बना? 2006 में दिल्ली में बनाए गए इस संगठन का उसी साल दिल्ली विश्वविद्यालय छात्र संघ (डूसू) के चुनावों में अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् (एबीवीपी) के साथ गठजोड़ हुआ. उस समय एबीवीपी का कहना था कि

हम वाईएफई के पास नहीं गए, उन्होंने खुद आगे बढ़ कर हमारा समर्थन करने की पेशकश की. वाईएफई का तर्क था कि 'वे मूलत: कांग्रेस-नीत यूपीए सरकार के विरोधी हैं. जाति-आधारित आरक्षण और नीतियों का मसला उसके बाद आता है. एबीवीपी का समर्थन हम 'मेरे शत्रु का शत्रु मेरा दोस्त है' उक्ति के आधार पर कर रहे हैं.'

भारत के धर्मनिरपेक्ष खेमे को यह बताने की जरूरत नहीं होनी चाहिए कि वाईएफई की रगों में अरविंद केजरीवाल-मनीष सिसोदिया और उनके फोर्ड फाउंडेशन पालित एनजीओ का निर्देशन और पैसा दौड़ रहा था. अपने को सबसे ज्यादा क्रांतिकारी छात्र संगठन बताने वाले आल इंडिया स्टूडेंट्स एसोसिएशन (आइसा) ने 2018 के डूसू चुनावों में आम आदमी पार्टी के छात्र मोर्चा छात्र युवा संघर्ष समिति (सीवाईएसएस) के साथ गठजोड़ किया. ध्यान दिला दें कि वाईएफई का गठन तत्कालीन मानव-संसाधन विकास मंत्री अर्जुन सिंह द्वारा केंद्रीय विश्वविद्यालयों, आईआईटियों, आईआईएमों जैसी उच्च शिक्षा की संस्थाओं में पिछड़े वर्ग के छात्र-छात्राओं को 27 प्रतिशत आरक्षण देने के फैसले के विरोध में किया गया था.

यह भी अब ज्यादा स्पष्टता से समझ में आ सकता है कि आरएसएस/भाजपा से उनके छद्म राष्ट्रवाद, छद्म देशभक्ति और फासीवाद पर लगातार जवाब तलब करने वाले धर्मनिरपेक्ष खेमे ने लम्बे समय से 'समाज-सेवा' में सक्रिय गुरु-शिष्य (अन्ना हजारे-केजरीवाल) से कभी यह नहीं पूछा कि 1984 में सिखों की खुलेआम नृशंस हत्याओं, 1992 में हुए बाबरी-मस्जिद-ध्वंस और उसके बाद के भयानक सांप्रदायिक दंगों, 2002 के गुजरात-कांड पर उनकी क्या राय रही है. मैंने जब ये सवाल उठाए थे तो सभी ने 'चुप रहो और उपेक्षा करो' का रवैया अपना लिया था. कुछ मार्क्सवादियों ने कहना शुरू किया था कि मैं झूठे कयास लगाता हूं. (क्योंकि भूतकाल में क्या हुआ और भविष्य में क्या होने वाला है, इसकी वैज्ञानिक जानकारी का पेटेंट केवल उनके पास है.) कुछ समाजवादियों ने कहा कि आम आदमी पार्टी की दिल्ली फतह से मेरी आंखें खुल जानी चाहिए थीं. अब मुझे दिल्ली की सातों लोकसभा सीटों पर फतह हासिल करने तक इंतजार करना चाहिए. यानि जो जीतने वाला ही सिकंदर होता है. विचारधारा-विहीन राजनीति के हमाम से आने वाली वे आवाजें अपने आप में सही थीं. इसलिए उनका बुरा मानने का सवाल ही नहीं उठता था.

भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन के दौरान जब यह सच्चाई सामने आई कि केजरीवाल ने सरकारी खजाने का 9 लाख रूपया दबाया हुआ था, तो ये सभी अपने 'ईमानदार' नायक के बचाव में 'भ्रष्ट' कांग्रेस पर इसी गोदी मीडिया की मार्फ़त टूट पड़े थे. तब 9 लाख का चेक सरकार को नहीं, सीधे प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह को भिजवाया गया था, जिन्हें खुलेआम भ्रष्टाचारी बता कर बदनाम करने में इनमें से किसी को तनिक भी संकोच नहीं हुआ था.

कारपोरेट-सांप्रदायिक गठजोड़ के तीन दशकों बाद यह सच्चाई अच्छी तरह से सामने आ चुकी है कि पिछले तीन दशकों में बना 'नया' भारत एक 'हिंदू' भारत ही बन सकता था, और वही वह बना है. आरएसएस/भाजपा इसे हिंदू-राष्ट्र कहते हैं. धर्मनिरपेक्ष खेमे के बुद्धिजीवी और नेता तरह-तरह के भ्रम-जाल रच कर देश की मेहनतकश जनता, नई पीढ़ियों और सबसे ज्यादा अल्पसंख्यकों से इस सच्चाई को छिपाए रखना चाहते हैं कि निगम-भारत उर्फ़ हिंदू-राष्ट्र उनकी स्वीकृति और सहभागिता से बन रहा है. ये लोग, जैसा कि जताते हैं, सांप्रदायिक फासीवाद के ही सच्चे विरोधी होते तो कम से कम केजरीवाल की सांप्रदायिक राजनीति का कुछ विरोध करते. अब यह स्पष्ट होकर सामने आ गया है कि सांप्रदायिक फासीवाद धर्मनिरपेक्ष खेमे का सच्चा सरोकार नहीं है. वह एक शगल है, जिसके तहत धर्मनिरपेक्ष खेमे के झंडाबरदार आरएसएस/भाजपा और नरेंद्र मोदी को कोसने का सुख लेते हैं.

धर्मनिरपेक्ष खेमे ने भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन की बिसात बिछा कर एक तरफ नरेंद्र मोदी के लिए राष्ट्रीय राजमार्ग प्रशस्त कर दिया था, दूसरी तरफ केजरीवाल पर अपना दांव लगा दिया था. वह धर्मनिरपेक्ष खेमे के राजनीतिक दिवालियापन का सचमुच हैरत में डालने वाला दौर था. पूरा खेमा केजरीवाल की कलाबाजियों के साथ उठता-बैठता और सोता-जागता था. उसे दिन में सपने आते थे कि केजरीवाल की लोकप्रियता की अंतर्राष्ट्रीय रेटिंग नरेंद्र मोदी से ऊपर चली गई है. वह पूरी कहानी 'भ्रष्टाचार विरोध: विभ्रम और यथार्थ' पुस्तक में दर्ज है.

तब से लेकर अभी तक हिंदू बहुसंख्यावाद की सांप्रदायिक राजनीति पर सवार नरेंद्र मोदी को रोकने के लिए केजरीवाल हारिल की लकड़ी बना हुआ है. जैसे नरेंद्र मोदी का गोदी मीडिया है, उसी तरह नरेंद्र मोदी का विरोधी मीडिया केजरीवाल की गोदी में बैठा हुआ है. नरेंद्र मोदी ने जब मीडिया को खरीदा था, तो वे तीन बार गुजरात के मुख्यमंत्री रह चुके थे, और चुनींदा उद्योगपतियों के विश्वास-भाजन बन चुके थे. धर्मनिरपेक्ष खेमे को केजरीवाल को नरेंद्र मोदी जैसी हैसियत में पहुंचाने की जल्दी है. राहुल गांधी को लेकर यह खेमा अक्सर आकर्षण-विकर्षण का शिकार होता रहता है. उसे पूरा भरोसा केजरीवाल की संभावनाओं पर है. इसी भरोसे के बूते उसका भावी 'हिंदू-हृदय-सम्राट' पंजाब में किसान आंदोलन की पूरी फसल काट ले गया.

यह बताने की जरूरत नहीं होनी चाहिए कि इस खेमे में किसी को राज-पुरुष बनना है, किसी को विदेशी फंडिंग लेनी है, किसी को पुरस्कार लेने हैं, किसी को विशेषज्ञ होने का नाम कमाना है. निगम-भारत उर्फ़ हिंदू-राष्ट्र में उनका यह कारोबार बढ़ते जाना है. निगम-भारत के तत्वावधान में खुले निजी विश्वविद्यालयों में उन्होंने अच्छी पैठ जमा ली है. जल्दी ही जो विदेशी विश्वविद्यालय यहां खुलेंगे, उनमें भी ये सब सेवार्थ उपलब्ध होंगे. कल विदेशी चैनल और अखबार भी यहां आएंगे. उनमें भी धर्मनिरपेक्ष खेमे को सेवा का अवसर मिलेगा. देश-विदेश में इनके लिए पद-पुरस्कारों की कमी नहीं रहेगी.

यह कारोबार चलता रहे, इसके लिए धर्मनिरपेक्ष खेमे को अधिक कुछ नहीं करना है. फ़िलहाल गुजरात और हिमाचल प्रदेश के चुनाव होने हैं. केजरीवाल की सांप्रदायिक चालबाजियों को हमेशा की तरह नज़रंदाज़ करके खास कर गुजरात विधानसभा चुनावों में मुसलमानों को आम आदमी पार्टी के पक्ष में लामबंद करना है. हिमाचल प्रदेश में मुसलमान नहीं के बराबर हैं. वहां वह मतदाताओं को 'दिल्ली मॉडल' बेचने में सहायक की भूमिका निभा सकता है. दिल्ली में नगर-निगम चुनाव भी होने वाले हैं. धर्मनिरपेक्ष खेमे को कमर कस कर पहले चार चुनावों की तरह दिल्ली के मुसलमानों के झड़पल वोट आम आदमी पार्टी के पक्ष में डलवाने हैं.

नए पाठक जिज्ञासा कर सकते हैं कि केजरीवाल-समर्थक धर्मनिरपेक्ष खेमे में कौन-कौन प्रमुखता से आते हैं. उनका संक्षिप्त ब्यौरा इस प्रकार हो सकता है - लोकतंत्रवादी, प्रगतिशील, धर्मनिरपेक्ष बुद्धिजीवी, जिनमें बहुत से प्रतिष्ठित पत्रकार और विद्वान शामिल हैं; तीनों कम्युनिस्ट पार्टियां और उनके नेता जिन्होंने सबसे पहले 'केजरीवाल-क्रांति' की 'विचारधारा' को पहचाना; समाजवादी आंदोलन के खर-पतवार, जो अपने को समाजवादी आंदोलन की सच्ची फसल प्रचारित करने में जुटे थे; अंतर्राष्ट्रीय फंडिंग और पुरस्कार पाने वाली एनजीओ हस्तियां; दलित विचारक/संगठन जो प्रत्येक सत्ता के गलियारे में अपना हिस्सा पाने की नीयत से परिचालित होते हैं; स्त्रीवादी विदुषियां जो पद-पुरस्कार प्राप्त करने के एवज़ में स्त्री-उत्पीड़न की घटनाओं पर केजरीवाल की अवसरवादी चालाकियों पर पर्दा डालती हैं और जिनके लिए केजरीवाल अकेला शेर है; और हाल के कुछ सालों में संगठित हुए पिछड़े समाज के बुद्धिजीवी, जो अपनी ताकत बढ़ाने के लिए किसी भी समझौते के लिए तैयार रहते हैं.

यह सही है कि भारतीय राष्ट्र और समाज अभी तक के सबसे बड़े संकट के दौर से गुजर रहे हैं. पिछले तीन दशकों के अराजनीतिकरण ने इस दौर की पीढ़ियों पर गहरा नकारात्मक प्रभाव डाला है. फिर भी प्रत्येक पीढ़ी की खेप में कितने ही जागरूक नौजवानों/नवयुवतियों का सामाजिक-राजनीतिक पटल पर आगमन होता रहता है. उन्हें यह समझना होगा कि संकट के समाधान के दावेदार संकट का हिस्सा ज्यादा हैं. तभी वे निगम-भारत उर्फ़ हिंदू-राष्ट्र के निर्माण में जुटी टीम-इंडिया से अलग अपनी स्वतंत्र भूमिका ले पाएंगे.

(*समाजवादी आंदोलन से जुड़े लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व शिक्षक और भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला के पूर्व फेलो हैं*)